Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Impact Factor (IIJIF): 5.454 | Vol. 8, Issue 1 | May. 2020 - October 2020 | pp. 55-62

संस्कृत शतक काव्यों का उद्भव एवं विकास

डॉ. नवनीत शर्मा

राजकीय कन्या महाविद्यालय, बयाना, भरतपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

संस्कृत साहित्य में शतक काव्यों का उद्भव प्राचीन काल से विद्यमान रहा है। प्रारम्भ में मुक्तक काव्यों के रूप में सृजित सौ (100) पद्यों के संकलन को शतक संज्ञा से अभिहित किया जाता था, अत: काव्य-विधा की दृष्टि से शतक नाम को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाकर मुक्तक संज्ञा को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया। इस मुक्तक विधा के सन्दर्भ में सर्वप्रथम उल्लेख भामह के काव्यालंकार में प्राप्त होता है। भामह ने अनिबद्ध काव्यों के भेदों के अन्तर्गत मुक्तक की गणना स्वीकार की है। वस्तुत: अमरुकशतक एक ऐसी रचना है, जो यह स्पष्ट कर देती है कि शतक काव्य का प्रारम्भ मुक्तकों के सृजन से ही हुआ है। आचार्य आनन्दवर्धन के अभिप्राय को उनके टीकाकार अभिनवगुप्त ने भी भली भाँति स्पष्ट करने का प्रयास किया है।शतक काव्य मूलत: कोई विधा नहीं है, अपितु सौ पद्यों के संकलन के कारण किसी भी काव्य विशेष को शतक संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है, किन्तु यह धारणा शास्त्रीय दृष्टि से सम्यक् नहीं कही जा सकती, क्योंकि संस्कृत साहित्य में शतक काव्यों की सुविकसित परम्परा रही है, अत: काव्य के प्रभेदों में शतक काव्यों की गणना किये जाने के कारण उसका कोई लक्षण निर्धारित किया जाना चाहिए। इस प्रकार कहा जा सकता है कि ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी से ही अविकसित रूप में शतक काव्य लेखन होता रहा है, जो बीसवीं शताब्दी तक निरन्तर रूप में शतक काव्य परम्परा के रूप में पूर्ण विकास की अवस्था को प्राप्त कर चुकी है। वर्तमान शताब्दी में भी आधुनिक साहित्यकारों, रचनाकारों द्वारा निरन्तर रूप से शतक काव्य लेखन का कार्य किया जा रहा है। इसी श्रृंखला में डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने भी अपनी लेखनी के माध्यम से सभी प्रकार के शतक काव्यों का सृजन कर माँ वाग्देवी के कोषागार की समृद्ध किया है। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में शतक काव्यों का उद्भव एवं विकास का विश्लेषण प्रस्तावित शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य है।

संकेताक्षर : *शतक काव्य, मुक्तक, प्रबन्धकाव्य, काव्यशास्त्र, गीतिकाव्य*

प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में शतक काव्यों का उद्भव प्राचीन काल से विद्यमान रहा है। प्रारम्भ में मुक्तक काव्यों के रूप में सृजित सौ (100) पद्यों के संकलन को शतक संज्ञा से अभिहित किया जाता था, अत: काव्य-विधा की दृष्टि से शतक नाम को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाकर मुक्तक संज्ञा को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया। इस मुक्तक विधा के सन्दर्भ में सर्वप्रथम उल्लेख भामह के काव्यालंकार में प्राप्त होता है।

मुक्तक शब्द से आशय

संस्कृत व्युत्पत्ति-शास्त्रानुसार मुच् धातु से क्त प्रत्यय तथा स्वार्थ में कञ् प्रत्यय के योग से मुक्तक शब्द निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है:- वह रचना जो स्वतन्त्र विषय पर संक्षिप्त रूप में लिखी गई हो। पारस्कर गृह्यसूत्र में एक स्थान पर मृक्तक शब्द को परिभाषित करते हुए लिखा है मुच्यते स्मेति मृक्तम् स्रस्वं द्रव्यं मुक्तकम्

आचार्य केशव द्वारा सृजित शब्दकल्पद्रुम कोश में मुक्त एवं मुक्तक को प्राय: समान मानते हुए उसे निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है :-

विना कृतं विरहितं व्यवच्छिन्नं विशेषितम्।

भिन्नं स्यादथ निर्व्यूहं मुक्तं यो वाऽतिशोभन:।।

उपर्युक्त उल्लेख के अनुसार मुक्तक शब्द का प्रयोग प्राय: ऐसे काव्य के लिए किया जाता है, जो विषयगत पौर्वापर्य से रहित

तथा प्रबन्धकाव्यों के नियमों से युक्त होता है। इस काव्य की दो विशेषताएँ यहाँ बताई गई हैं - प्रथम विशेषित होना तथा द्वितीय अत्यन्त शोभन होना। रसोत्कर्ष की दृष्टि से यह मुक्तक काव्य विशेषित होता है तथा चमत्कार प्रधान होने के कारण शोभन होता है।

इस श्लोक का पर्यायालोचन करने के उपरान्त आधुनिक युग के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. रामसागर त्रिपाठी ने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि मुक्तक काव्य प्राय: पूर्वापर सम्बन्धों से निरपेक्ष रहते हुए भी अर्थ की पूर्ण अभिव्यक्ति करने में पूर्ण समर्थ होता है काव्य के लिए अपेक्षित चमत्कृति आदि विशेषताओं से युक्त एवं काव्यगत विशेषताओं के कारण काव्यानन्द को प्रदान करने वाला होता है। इसके परिशीलन से ब्रह्मास्वादसहोदर चर्वणा के प्रभावस्वरूप स्रदय की मुक्त अवस्था का पाठकों को सहज अनुभव सम्भव होता है।

शब्दकल्पद्रुम के रचयिता ने मुक्तक की उपर्युक्त परिभाषा को सम्भवत: अग्नि पुराण से प्रभावित होकर लिखा है, क्योंकि कोषकार की मूल भावना का दर्शन हमें अग्नि पुराण में प्रतिपादित मुक्तक-लक्षण के प्रतिपादक निम्नांकित पद्य में देखने को मिलता है-

मुक्तक श्लोक एवैक चमत्कारक्षम: सत्ताम्

उपर्युक्त कथन में अग्निपुराणकार ने स्पष्ट किया है, कि मुक्तक वह श्लोक कहा जाता है, जो सहृदयों को अपना आह्लाद्जनक अर्थ व्यक्त करने में समर्थ रहा हो। तात्पर्य यह है कि मुक्तक काव्य भले ही अनेक पद्यों का हो सकता है, किन्तु उसके प्रत्येक पद्य छन्दोबद्ध होने के साथ-साथ स्वतन्त्र रूप से रसजन्य चमत्कार को उत्पन्न करने मे समर्थ होते हैं। यही कारण है कि मुक्तकों की सरसता संस्कृत-आलोचना-शास्त्र में प्रारम्भ से ही महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में समालोचित रही है, जिसका उल्लेख सुप्रसिद्ध ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने भी किया है।

प्रबन्धे-मुक्तके वापि रसादीन् वद्धुमिच्छता

आनन्दवर्धन के मतानुसार रसोत्कर्ष एवं चमत्कार के क्षेत्र में मुक्तक प्रबन्ध काव्य के समान ही समादृत होता है। ध्वन्यालोककार ने यह भी निर्देश किया है कि मुक्तक के रचनाकार कवि मुक्तकों में स्वेच्छानुसार प्रबन्धकाव्यों की भाँति की रसयोजना का अभिनिवेश करते हैं। उन्होंने इस सन्दर्भ में प्रमुख श्रृंगारी कवि अमरुक का उल्लेख किया है, जिनके मुक्तक अमरुकशतक नामक शतक रचना में प्राप्त होते हैं।

वस्तुत: अमरुकशतक एक ऐसी रचना है, जो यह स्पष्ट कर देती है कि शतक काव्य का प्रारम्भ मुक्तकों के सृजन से ही हुआ है। आचार्य आनन्दवर्धन के अभिप्राय को उनके टीकाकार अभिनवगुप्त ने भी भली भाँति स्पष्ट करने का प्रयास किया है। ध्वन्यालोक की लोचन टीका में उन्होंने इस सन्दर्भ में अपना निष्कर्ष निम्नांकित शब्दों के माध्यम से व्यक्त किया है -

पूर्वापरनिरपेक्षतया येन रसचर्वणा क्रियते तन्मुक्तकम्

आचार्य अभिनवगुप्त के कथनानुसार जिस काव्य में पूर्वापर प्रसंग की अपेक्षा न रखते हुए तथा अन्य पद्यों का अवलम्बन न लिया जाकर भी रसास्वाद की अनुभूति हो, उसे मुक्तक माना जाना चाहिए।

मुक्तक काव्यों की विशेषताएँ

संस्कृत साहित्य-सृजन के क्षेत्र में मुक्तक विधा ने अपना विशेष स्थान बनाया है, जिसका मूल कारण उसमें विद्यमान वे विशेषताएँ हैं, जो शास्त्रीय दृष्टि से पर्याप्त महत्त्वपूर्ण जान पड़ती हैं। यहाँ इन विशेषताओं को समेकित रूप में प्रस्तुत किया जाना उचित होगा-

1. मुक्तक काव्य में महाकाव्य के प्रतिपाद्य की भाँति जीवन की समग्रता का प्रसार नहीं किया जाता, अपितु एकदेशीय तन्मयता का चित्रण ही कवि का मूल लक्ष्य होता है।
2. वस्तु-व्यापार की मार्मिक अभिव्यंजना पाठकों को प्रभावित किए बिना नहीं रहती।
3. मुक्तक रचना में कवि कल्पना की समाहार शक्ति तथा भाषा की समास शक्ति का सर्वाधिक प्रश्रम ग्रहण करता है।
4. मुक्तक रचना में भावों की सम्प्रेषणीयता एवं भावान्विति अनिवार्य रूप से विद्यमान होती हैं।
5. मुक्तक में प्राय: दोहरी रमणीयार्थप्रतिपादकता होती है। प्रथम विभावादि के सहयोग से एवं द्वितीय वैदग्ध्यभंगीभणिति के द्वारा।

मुक्तकों का वर्गीकरण

संस्कृत काव्यशास्त्र के पुरातन आचार्यो ने मुक्तक को स्वतन्त्र काव्य विधा के रूप में स्वीकार करने के साथ-साथ उसे चार रूपों में वर्गीकृत किया है -

1. युग्मक (सन्दानितक)
2. विशेषक
3. कलापक
4. कुलक

उपर्युक्त चारों भेदों में से तीन भेदों के विषय में शास्त्रीय दृष्टि एक जैसी रही है, किन्तु कुलक के विषय में प्राय: मतभेद विद्यमान रहा है। बाणभट्ट ने कुलक में अधिकतम बारह पद्यों की योजना को स्वीकार किया था, किन्तु हेमचन्द्र ने चौदह अन्तिम संख्या का निर्धारण किया।

पञ्चादिभि : चतुर्दशान्तम् कुलकम्

कतिपय आचार्यो ने कोष एवं संघात नामक दो भेदों को ही मुक्तक के सृजन निष्ठ प्रकारों के रूप में मान्यता प्रदान की है। संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्य दण्डी एवं विश्वनाथ इस विषय में लगभग एकमत हैं। इनमें संघात के स्वरूप को समालोचित करते हुए काव्यादर्श के टीकाकार नृसिंहदेव ने यह लिखा है, कि कवि एक ही अर्थ को लेकर एक छन्द में अनेक मुक्तकों की रचना करता है, तो उन मुक्तकों का वह संकलन संघात कहा जाता है। इस दृष्टि से अनेक शतक काव्य संघात श्रेणी की मुक्तक विधा में सृजित माने जा सकते हैं।

मुक्तक काव्य के सृजित स्वरूप के उदाहरण के विषय में प्राय: भारतीय अवधारणा यह रही है कि मुक्तकों का उद्गम भी वैदिक साहित्य से हुआ है ऋग्वेद के अक्ष एवं उषा सूक्त में सूक्तकार की अनेक भावुक कल्पनाएँ मुक्तकों के अविकसित स्वरूप को व्यक्त करती है। हम परवर्ती काल के साहित्य को अन्वेषण करते हैं तो एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह प्राप्त होता है कि बौद्ध भिक्षुओं के जीवनांशों को केन्द्र बनाकर लिखी गई थेरगाथाएँ वस्तुत: मुक्तकों का वह रूप है, जो प्राथमिक तौर पर सृजित किया गया था।

बौद्ध युग की इन प्राकृत रचनाओं के प्रभावस्वरूप संस्कृत के कालिदास जैसे महाकवियों ने मुक्तक काव्य के सृजन में दक्षता प्राप्त की। कालिदास का ऋतृसंहार प्राथमिक रूप में उत्कृष्ट मुक्तक काव्य का उदाहरण उपस्थापित हुआ तथा इसके पश्चात् कविपरम्परा से मुक्तकों के सृजन की प्रवृति निरन्तर समृद्ध होती चली गई।

मुक्तक विधा के समानान्तर एक और विधा उदित एवं पल्लवित हुई, जिसका शतक काव्य के उद्भव में सर्वाधिक योगदान रहा। इस विधा को गीतिकाव्य नाम से कहा गया था। गेय पदों की अनुभूति कराने वाला यह काव्य मुक्तक शैली में लिखा जाता था। वह पृथक से गीतिकाव्य नाम से जाना जाने लगा। सुकुमार भावनाएँ पदों की मृदुता एवं गेयता इस गीतिकाव्य के महत्त्वपूर्ण आधारस्तम्भ थे।

यद्यपि गीति का साहित्य में बहुआयामी स्थान रहा है, अत: इसको एक सीमा रेखा में आबद्ध नहीं किया जा सकता। पाश्चात्य विद्वानों के मत में गीति का वाचक शब्द लिरिक है, जो मूल रूप में ग्रीक भाषा में प्राप्त होता है। इस शब्द का तात्पर्य गेय मुक्तक के अर्थ में ग्रहण किया जाता रहा है।

गीतिकाव्य की परिभाषाएँ

यद्यपि गीतिकाव्य को परिभाषित करना अत्यन्त कठिन है, किन्तु इस सन्दर्भ में भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा की गई अनेक परिभाषाएँ उपलब्ध होती हैं, जिन्हें गीतिकाव्य के स्वरूप को समझने के लिये यहाँ प्रस्तुत करना आवश्यक होगा।

भारतीय मत

डॉ. रामखिलावन पाण्डेय ने गीतिकाव्य को परिभाषित करते हुए लिखा है कि- सजीव भाषा में व्यक्ति के आन्तरिक भावों की समान अभिव्यंजना संगीतात्मक आग्रह के साथ जिसमें विद्यमान होती है, वह गीति काव्य है।

डॉ. नगेन्द्र ने कहा है - गीति की आत्मा भाव है, जो किसी प्रेरणा के भाव से दबकर एक साथ गीति रूप में प्रस्फुटित हो उठती है। स्वभाव से ही इसमें हार्दिकता का तत्त्व विद्यमान रहता है, इसमें एक प्रकार की सूत्रता तथा संगठित एकता होती है, जो समस्त कविता को अन्वित किये रहती है। यह एक सरल एवं क्षणिक मनोवेग का ही परिणाम है।

डॉ. नगेन्द्र के समान भावों को प्रधानता देते हुए **महादेवी वर्मा** ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है कि साधारण गीतिकाव्य व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुखदु:खात्मक अनुभूति का वह शब्दरूप है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय है।

पाश्चात्य मत

अर्नेस्ट रॉस के अनुसार 'गीति काव्य उन शब्दों की संगीतात्मक अभिव्यक्ति है, जो प्रभविष्णु भावों से अनुशासित तथा शक्तिशाली लयों द्वारा बन्धनों से विमुक्त होता है।'

हीगल के मतानुसार - 'गीतिकाव्य काव्यात्मक तथा व्यक्तिगत शैली में जीवन के आन्तरिक संघर्ष, उसकी आशा-निराशा, हर्ष-शोक एवं सुख-दु:खमयी अनुभूतियों की बाह्य अभिव्यंजना है।'

ब्रूनेतियर के मतानुसार - 'गीतिकाव्य में कवि प्राय: भावानुकूल लय में अपनी आत्मनिष्ठ वैयक्तिक भावना को अभिव्यक्त करता है।'

उपर्युक्त परिभाषाओं के अवलोकन से स्पष्ट होता है, कि गीतिकाव्य अनेक विशेषताओं से युक्त रहा है, जिसमें मानवीय मनोभावों की मार्मिक अनुभूति, भावुकता, कल्पना-प्रवणता एवं भावान्विति को प्रमुख रूप से गिनाया जा सकता है।

गीति काव्य का उद्भव भी वेदों से ही स्वीकार किया जाता रहा है। क्योंकि सामवेद को गीतियों के संग्रह के रूप में स्वीकार किया गया है। केवल भारतीय विद्वानों ने ही नहीं, पाश्चात्य विद्वानों में भी डॉ. मैकडोनाल्ड एवं कीथ ने ऋग्वेद के 'उषा सूक्त' को गीतिकाव्य का मूल स्रोत स्वीकार किया है।

संस्कृत साहित्य के समग्र अध्ययन से यह उपलक्षित होता है, कि सर्वप्रथम महाकवि कालिदास ने मेघदूत के रूप में गीतिकाव्य

का उदाहरण प्रस्तुत किया तथा उसके आधार पर परवर्ती काला में अन्य गीतिकाव्यों की रचना सम्भव हुई, जिन्हें संक्षेप में चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है :-

1. समस्यापूर्ति काव्य।
2. दार्शनिक काव्य।
3. सन्देश काव्य।
4. प्रतिसन्देश काव्य।

गीतिकाव्य के उपर्युक्त चारों स्वरूपों में से सन्देश-काव्य-परम्परा का मूल बीज मेघदूत ही है, जिसके सृजन की कल्पना सम्भवतया रामायण में हनुमान को लंका भेजने की घटना के आधार पर ही गयी है। सन्देश-काव्य-परम्परा में अनेक दूतकाव्य लिखे जा चुके हैं तथा प्रतिसन्देश काव्य के रूप में भी दूतकाव्यों की रचना हुई है।

मुक्तक एवं गीति के अतिरिक्त एक अन्य विधा, जिसे स्तोत्र काव्य कहा गया है, वह भी मूल रूप से शतक काव्य का मूल स्त्रोत रही है। स्तोत्र काव्य का आदिम रूप वैदिक सूक्त है, जिनके आधार पर परवर्ती काल में भक्तिपरक स्तुतिकाव्यों की रचना होती रही है। रामायण एवं महाभारत के अतिरिक्त पुराणों में स्तोत्र काव्य के अनेक स्थल उपलब्ध होते हैं, जो लौकिक स्तोत्रकाव्यपरम्परा के मूल आधार रहे हैं।

लौकिक स्तोत्र-काव्य-परम्परा में महाकवि कालिदास की पञ्चस्तवी, बाणभट्ट एवं मयूर कवि के स्तोत्रकाव्य प्रसिद्ध रहे हैं। आचार्य आनन्दवर्धन ने देवीशतक के रूप में स्तोत्रकाव्य की रचना की थी। जयदेव के गीतगोविन्द में स्तोत्र एवं गीति का मिश्रण साहित्य की दृष्टि से पर्याप्त प्रशंसनीय रहा है।

वर्तमान में उपलब्ध स्तोत्रों में पुष्पदन्त-विरचित स्तोत्र तथा शंकराचार्य द्वारा सृजित स्तोत्रकाव्य उपलब्ध होते हैं। इनके अतिरिक्त बिल्वमंगल, यामुनाचार्य, जगद्धर, भट्ट नारायण इत्यादि उल्लेखनीय स्तोत्रकाव्यकार हुए हैं, जिन्होंने शतक काव्य की पृष्ठभूमि उपस्थापित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

शतक काव्य

शतक काव्य मूलत: कोई विधा नहीं है, अपितु सौ पद्यों के संकलन के कारण किसी भी काव्यविशेष को शतक संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है, किन्तु यह धारणा शास्त्रीय दृष्टि से सम्यक् नहीं कही जा सकती, क्योंकि संस्कृत साहित्य में शतक काव्यों की सुविकसित परम्परा रही है, अत: काव्य के प्रभेदों में शतक काव्यों की गणना किये जाने के कारण उसका कोई लक्षण निर्धारित किया जाना चाहिए।

यद्यपि संस्कृत काव्यशास्त्र के ग्रन्थों में शतक काव्य के शास्त्रीय लक्षण के सन्दर्भ में व्यापक चिन्तन नहीं हुआ है, जिसके कारण शतक काव्य का अभिप्राय स्पष्ट नहीं होता। कतिपय आधुनिक विद्वानों ने शतक काव्य के विषय में निम्नांकित उल्लेख किये हैं:-

1. शतक काव्य छन्दोबद्ध रचना तो होती है, किन्तु सर्गबद्ध नहीं।
2. शतक काव्य में आद्योपान्त एक ही छन्द प्रयुक्त होता है, तथापि आवश्यकतानुसार छन्द: परिवर्तन कहीं भी किया जा सकता है।
3. शतक काव्य वस्तुयोजना एवं संवादयोजना से रहित होता है, तथा पात्रयोजना का भी उसमें अभाव पाया जाता हैं।
4. शतक काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य एक ही होता है, तथापि उपविषय उसमें सन्निविष्ट किये जा सकते हैं।
5. शतक काव्य में अंगी रस की योजना नहीं होती, अत: एक शतक काव्य में एकाधिक रसों का प्रयोग भी किया जा सकता है।

शतक काव्य का स्वरूप

स्वरूप की दृष्टि से शतक काव्य मुक्तक शैली पर आधारित ऐसा काव्य है, जिसमें गीति की अप्रधानता होती है। इसके अतिरिक्त विषय की प्रधानता होना भी आवश्यक है। शास्त्रीय मानदण्डों के रूप में ग्रहण किए जाने वाले रस, गुण, रीति, अंलकार, छन्द इत्यादि के प्रयोग में कवि स्वतन्त्र होता है। इसके प्रतिपाद्य में विषय से सम्बद्ध कवि के सूक्ष्म अनुभवों का मार्मिक एवं प्रभावशाली चित्रण होता है। प्रभावोत्पादक सूक्तियों का प्रयोग शतक काव्य को जीवन्त बना देता है तथा लोकजीवन के अधिकाधिक सन्निकट ले जाने में सहायक होता है।

काव्यशिल्प की दृष्टि से यद्यपि शतककाव्य प्रबन्धकाव्य की भाँति नियमबद्ध नहीं होते, तथापि शास्त्रीय तत्त्वों से अनुप्राणित होने के कारण उनमें कवित्व का उत्कर्ष यथेच्छ रूप में देखा जाता है। शतककाव्य कलापक्ष की अपेक्षा भावपक्ष की प्रधानता से युक्त होते हैं। अत: शतक काव्य में कभी एक विषय पर आधारित अनेक मुक्तकों की प्रकारान्तर से सृष्टि की गई होती है, तथा कहीं पर प्रत्येक मुक्तक पृथक विषय को भी अभिव्यक्त करता है। इससे स्पष्ट है कि शतक काव्य का स्वरूप स्थिर नहीं होता, फिर भी वस्तुयोजन को अधिकाधिक भावगम्य बनाने में कवि का सम्पूर्ण प्रयत्न निहित होता है।

आकार में लघु होने पर भी विशिष्टार्थ का प्रतिपादन एवं पूर्वापर सम्बन्ध की निरपेक्षता के होते हुए शतक काव्य में काव्यसौन्दर्य

की सशक्तता सर्वाधिक रूप में विद्यमान होती है। निष्कर्षत: शतक काव्य को हम भावसम्प्रेषण के समुचित माध्यम के रूप में स्वीकार कर सकते हैं, जिसमें भावों की तीव्रता एवं मधुरता पर्याप्त प्रभावी प्रतीत होती है।

आधुनिक संस्कृत-आलोचना-शास्त्र के आचार्यों ने शतक काव्यों को दो रूपों में वर्गीकृत किया है।

1. विषयानुबद्ध शतक काव्य
2. विषयोन्मृक्त शतक काव्य

विषयानुबद्ध शतक काव्य - विषयानुबद्ध शतक काव्य ने काव्य है जिसका मुख्य विषय कवि द्वारा निर्धारित होता है, उस मुख्य विषय को आधार बनाकर उससे सम्बन्धित अपने समस्त ज्ञानानुभवों का संकलन कवि क्रमिक रूप में करता है। ऐसे शतक काव्य को संघात श्रेणी में माना गया है। कुछ विद्वानों ने इन विषयानुबद्ध शतक काव्यों को संघात के अन्तर्गत स्वीकार किया है। अपनी मान्यता की प्रामणिकता के लिए उन्होंने काव्यादर्श की नृसिंहदेव कृत टीका के निम्नांकित अंश को उद्धृत किया है कि जब कवि काव्य के अन्तर्गत एक ही वृत्त में रचे हुए अनेक पद्यों में किसी एक ही विषय का वर्णन करता है, तो वह संघात कहा जाता है।

उक्त सन्दर्भ में एक विचारणीय तथ्य यह है, कि प्राचीन काव्य-विधाओं में संघात के अन्तर्गत पद्यों की संख्या का सीमांकन नहीं किया गया है, जबकि शतक काव्यों में पद्यों की संख्या सौ होना आवश्यक है। इस प्रकार वांछनीयता के आधार पर पद्यों में संख्यात्मक न्यूनाधिक्य होने पर उसे संघात श्रेणी का मुक्तम तो कहा जा सकेगा, किन्तु उसकी शतक काव्य संज्ञा नहीं की जा सकेगी।

विषयोन्मुक्त शतक काव्य - विषयोन्मुक्त शतक काव्य वह काव्य है, जिसमें विविध विषयों का समावेश विविध पद्यों के माध्यम से किया जाता है, किन्तु सम्पूर्ण काव्य का कलेवर 100 पद्यों में सीमांकन के नियमों का उल्लंधन नहीं करता। ऐसे शतक काव्य में विषयानुसार क्रमिक वर्णनों की योजना की जाती है।

कुछ विद्वानों ने इन्हें कोश श्रेणी का काव्य माना है। इस सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि कोश में शास्त्रीय तत्त्वों के उपस्थापन की वांछनीयता नहीं होती , जबकि शतक काव्यों में उनका होना आवश्यक होता है। इसके साथ ही कोश में सौ पद्यों का संख्यात्मक मानदण्ड भी स्वीकार्य नहीं होता, अत: प्रवृत्तिगत सादृश्य के आधार पर दोनों में समन्वय का औचित्य प्रतीत नहीं होता।

शतक काव्यों का वर्गीकरण

उपलब्ध शतक काव्यों में प्राप्त प्रतिपाद्य के आधार पर शतक काव्यों को विविध श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है तथा शतक काव्यों के अनेक श्रेणीगत भेद निर्धारित किये जा सकते हैं। आधुनिक आलोचना-शास्त्र में शतक काव्यों की निम्नांकित श्रेणीयाँ निर्धारित की गई हैं :-

1. स्तुतिप्रधान शतक काव्य।
2. शृंगारप्रधान शतक काव्य।
3. जीवनमूल्यपरक शतक काव्य।
4. नीतिपरक शतक काव्य।
5. युगबोधप्रधान शतक काव्य।
6. सामयिक समस्यामूलक शतक काव्य।
7. शास्त्रीय शतक काव्य।

स्तुतिप्रधान शतक काव्य - स्तुतिप्रधान शतक काव्य मूलत: स्तोत्र काव्य के रूप में सृजित किए जाते हैं। इनमें मुख्य रूप से भक्ति रस की प्रधानता देखी जाती है। प्रतिपाद्य की दृष्टि से भारतीय धर्म एवं दर्शन के महत्त्वपूर्ण विषयों की योजना यहाँ कवि का मुख्य लक्ष्य होता है। कलात्मकता की न्यूनता भावाभिव्यक्ति की सहजता विचारों की तन्मयता एवं अनन्य समर्पण की भावना इन शतक काव्यों के केन्द्रीभूत तत्त्व होते हैं। भक्ति रस के उत्कर्ष के लिए कवि करूण एवं शृंगार का प्रयोग करने में स्वतन्त्र होता है। कुछ विद्वानों ने इस प्रकार के स्तुतिप्रधान शतक काव्यों को अध्यात्मूलक शतक काव्य स्वीकार किया है।

शृंगार प्रधान शतक काव्य - शृंगारप्रधान शतक काव्यों में रसराज श्रृँगार का सूक्ष्म, मर्मस्पर्शी एवं प्रभावशाली चित्रण होता है। शृंगार की प्रधानता के कारण इन शतक काव्यों में सौन्दर्य एवं प्रणय के विषय को प्रतिपाद्य के रूप में ग्रहण किया जाता है। नारीसौन्दर्य चित्रण, नायक-नायिकाओं की चेष्टाएँ, कवि की अभिव्यक्ति का विषय बनते हैं, इन शतक काव्यों में शृंगार कहीं ध्वनि रूप होता है, तो कहीं भाव रूप में। भावध्वनि की प्रधानता के कारण कवि का सम्पूर्ण ध्यान मार्मिकता पर ही केन्द्रित रहता है।

जीवनमूल्यपर शतक काव्य - जीवनमूल्यपरक शतक काव्यों में मानवीय गुणों एवं सदाचारों को प्रतिपाद्य के रूप में ग्रहण किया जाता है। मानव-जीवन की उद्देश्य-परकता को सिद्ध करने के लिए उसके उन्नयन की दृष्टि से मूल्यसापेक्ष शिक्षा के सर्वोत्तम माध्यम के रूप में इन काव्यों का अपना महत्त्व है। ऐसे शतक काव्यों में भावगाम्भीर्य कम, किन्तु प्रभावोत्पादकता अधिक होती है।

उपलब्ध जीवनमूल्यपरक शतक काव्यों के आधार पर कुछ विद्वानों ने आलम्बन के भाव की प्रवृत्ति तथा उद्दीपन की विविधता से रहित होना इनकी अन्यतम विशेषताओं के रूप में स्वीकार किया है। इस

श्रेणी के शतक काव्यों में सामाजिक आदर्शों तथा नागरिक जीवन की प्रवृत्तियों का चित्रण भी किया जाता है, किन्तु उनमें भावों की तीव्रता नहीं होती।

नीतिपरक शतक काव्य – नीतिपरक शतक काव्य प्राय: उपदेशात्मक शैली में सृजित किये जाते हैं। इनका मूल प्रतिपाद्य मानव के नैतिक एवं चारित्रिक आदर्शो का प्रस्तुतीकरण होता है। मानववादी विचारों से ओत प्रोत ऐसे शतक काव्यों में मानवता के संरक्षण का विषय कवि के दृष्टिकोण में निहित होता है। उदात्त भावनाओं का चित्रण, मानवीय चरित्र का उत्थान नैतिक गुणों की महत्ता, कवि के मूल लक्ष्य के रूप में प्रस्तुत की गयी होती है। भावगाम्भीर्य, अनुभूति की तरलता, सूक्तिप्रयोग तथा मानवीय दृष्टिकोण नीतिपरक शतक काव्यों की अन्यतम विशेषताएँ है। भर्तृहरि एवं धनञ्जय के नीतिपरक शतक काव्यों में इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं।

युगबोधप्रधान शतक काव्य – युगबोधप्रधान शतक काव्यों में मुख्य रूप में युग की तात्कालिक परिस्थितियों को चित्रण प्रतिपाद्य के रूप में समाहित होता है। जीवन के नवीन अनुभवों के प्रस्तुतीकरण की चेष्टा करता है। इन शतक काव्यों में कवि की वर्णना-शक्ति किञ्चित् विराम को प्राप्त करती है तथा उक्तिवैचित्र्य की प्रवृत्ति अधिकाधिक रूप में अपनाई जाती है, जिसके कारण काव्यगत चमत्कार की सृष्टि सम्भव होती है। कहीं-कहीं उपदेशात्मक शैली का प्रयोग भी किया जाता है तथा आदर्शो की अपेक्षा यथार्थ के प्रस्तुतीकरण में कवि की अधिक रुचि दृष्टिगोचर होती है।

उपलब्ध शतक काव्यों में अन्योक्तिप्रधान शतक काव्य इसी श्रेणी के शतक काव्य माने जा सकते हैं। इन शतक काव्यों में समकालीन युग की प्रवृत्तियों को उभारने के साथ-साथ प्रासादिक शैली में बोधगम्य भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति को नूतन आयाम प्रदान किया जाता है।

सामयिक समस्यामूलक शतक काव्य – इस प्रकार के शतक काव्य सम सामयिक समस्याओं पर आधारित होते हैं। अत: स्वरूप की दृष्टि से इन्हें घटनाप्रधान माना जा सकता है। समष्टि एवं व्यष्टि में जनवादी प्रेरणा को सूत्रबद्ध करना यहाँ कवि का मुख्य लक्ष्य होता है। सामयिक दृष्टि से समस्या के महत्त्व को समझते हुए जनसामान्य का ध्यानाकर्षण कवि की सृजनचेतना का मूल बिन्दु होता है। ऐसे शतक काव्यों में कहीं-कहीं आक्रोश का स्वर भी देखने को मिलता है, जिसके कारण भावतिरेक की मात्रा न्यून हो जाती है, किन्तु कथ्य की सशक्त प्रस्तुति कलात्मकता को उपस्थित करने में समर्थ होती है।

शास्त्रीय शतक काव्य – शास्त्रीय शतक काव्य वे काव्य हैं, जिनमें किसी विशिष्ट शास्त्र को आधार बनाकर पद्यरचना की जाती है। शास्त्रीय महत्त्व के वे विषय, जिनमें रहस्य की गूढ़ता होती है, कवि की अभिव्यक्ति के आश्रय बनते हैं। कवि की सूक्ष्म भावाभिव्यंजना यहाँ विद्यमान होती है। ऐसे शतक काव्यों में कवि का पाण्डित्य एवं प्रतिभा भी अपने विकास का उचित अवसर प्राप्त करते हैं। शास्त्रचिन्तन की धारा को निरन्तरता प्रदान करने में ऐसे शतक काव्यों का उल्लेखनीय योगदान होता है। कवि इनमें अपने दृष्टिकोण को भी प्रस्तुत करता है। ऐसे शतक काव्यों में रसचर्वणा न होने पर भी रहस्योन्मूलन के कारण पाठकों का आकर्षण अन्तत: बना रहता है।

शतक काव्य परम्परा

लौकिक संस्कृत सृजना में शतक काव्य का प्रारम्भ प्राय: ईस्वीपूर्व तृतीय शताब्दी से माना जाता है, क्योंकि इस काल के सुप्रसिद्ध आचार्य चाणक्य द्वारा रचित चाणक्यशतक के विषय में कतिपय उल्लेख प्राप्त होते हैं, जिन्हें डॉ. कपिलदेव द्विवेदी ने संस्कृत साहित्य के समीक्षात्मक इतिहास में उद्धृत किया है।

कतिपय विद्वानों का मानना है कि ईस्वी पूर्व छठी शताब्दी में सृजित बौद्ध अवदान शतक को प्रथम शतक काव्य स्वीकार किया जाना चाहिए, किन्तु उनका यह मत अनेक दृष्टियों से खण्डित हो जाता है। प्रथम तो अवदान शतक में प्रतिपाद्य भले ही ईस्वी पूर्व छठी शताब्दी का हो, किन्तु इसका रचना काल ईस्वी पूर्व द्वितीय शताब्दी है। दूसरा एक उल्लेखनीय तत्त्व यह है, कि इस ग्रन्थ में एक सौ छ: गद्यकथाओं का संकलन है, अत: इसे शतक काव्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। संग्रहग्रन्थ होने के कारण यहाँ शतक शब्द का प्रयोग औपचारिक जान पड़ता है।

ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी में प्राकृत भाषा के उल्लेखनीय कवि हाल की 'गाथा सप्तशती' शतक काव्य के विकास की स्थिति को व्यक्त करती है। परवर्ती शतक काव्यों की शैली इस ग्रन्थ से प्रभावित रही है। इसी काल के कवि घटकर्पर द्वारा रचित शतक काव्य की भी जानकारी उपलब्ध होती है, किन्तु वर्तमान में उसके बाईस पद्य ही उपलब्ध होते हैं।

इसी काल के महाकवि कालिदास की रचनाओं में 'पञ्चस्तवी' शतक काव्य की शैली में सृजित की गई है। इसे पाँच शतक काव्यों का संग्रह कहा जा सकता है। कुछ विद्वान महाकवि कालिदास द्वारा रचित 'शृंगारतिलक' को भी शतक काव्य के रूप में स्वीकार करते हैं। इसके पश्चात् काश्मीरी कवि मातृचेट द्वारा रचित चतु:शतक चार शतक काव्यों का संग्रहग्रन्थ उपलब्ध होता है। इन्हीं की एक रचना 'अर्ध्यद' नाम से भी प्राप्त होती है।

तृतीय शताब्दी के नागार्जुन द्वारा सृजित चतु: स्तवी: ग्रन्थ भी चार शतक काव्यों के संग्रह के रूप में लिखा हुआ प्राप्त होता है। इस कालक्रम में भर्तृहरि सर्वाधिक उल्लेखनीय विद्वान रहे हैं, जिन्हें कुछ विद्वान ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी का मानते हैं, जबकि कुछ तृतीय शताब्दी का व्यक्तित्व स्वीकार करते हैं। भर्तृहरि द्वारा रचित तीन शतक काव्य प्राप्त होते हैं :- शृंगारशतक, नीतिशतक, वैराग्यशतक। इन्हीं के अनुकरण पर प्राकृत कवि धनदराज द्वारा विरचित तीन शतक काव्य भी इन्हीं नाम से प्राप्त होते हैं।

इसके पश्चात् सातवीं शताब्दी में संस्कृत गद्य के महान कवि बाणभट्ट द्वारा विरचित चण्डीशतक तथा इन्हीं के समकालीन कवि मयूर भट्ट द्वारा विरचित सूर्य शतक नामक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। आठवीं शताब्दी में दो शतक काव्य कार उल्लेखनीय रहे हैं। पहले अमरुक जिन्होंने अमरुक शतक की रचना की तथा दूसरे महाकवि भल्लट जिन्होंने भल्लट शतक की रचना की। ये दोनों ही कवि काश्मीरी माने जाते हैं।

नवम शताब्दी के प्रसिद्ध ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन द्वारा लिखे गये 'देवी शतक' नामक काव्य का उल्लेख प्राप्त होता है। इसी क्रम में दशम शताब्दी में कवि बल्लाल सेन द्वारा रचित 'बल्लाल शतक' नामक रचना पर्याप्त प्रसिद्ध रही है। इसी शताब्दी में सुन्दराचार्य द्वारा 'गीतिशतक' तथा समन्तभद्र द्वारा 'जिनशतक' की रचना की गई। ये दोनों जैन कवि रहे हैं तथा शतक काव्यों के विकास में इनका उल्लेखनीय योगदान रहा है।

ग्यारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध महाकवि बिहल्ण द्वारा रचित 'शान्तिशतक' नामक रचना भी उपलब्ध होती है। बारहवीं शताब्दी के गोवर्धनाचार्य ने गाथा सप्तशती के अनुकरण पर आर्यासप्तशती के रचना की, जो सात शतक काव्यों के संग्रह जैसी प्रतीत होती है। चौदहवीं शताब्दी में अनेक शतक काव्य लिखे गये, जिनमें तीन शतक काव्य सर्वाधिक प्रसिद्ध रहे हैं (1) वेदान्तदेशिक द्वारा रचित अच्युत शतक (2) कुसुमदेव द्वारा रचित दृष्टान्त शतक (3) उत्प्रेक्षावल्लभ द्वारा रचित सुन्दरीशतक।

सोलहवीं शताब्दी में भी शतक काव्यों की परम्परा सुविकसित रही तथा इस शताब्दी के प्रमुख शतक काव्य निम्न थे।

1. आचार्य जम्बूस्वामी द्वारा रचित जिनशतक
2. सोमप्रथ सूरि द्वारा रचित सूक्तिशतक
3. व्रजदत्त द्वारा रचित लोकेश्वरशतक
4. रामचन्द्र कविभारती द्वारा रचित भक्तिशतक

सत्रहवीं शताब्दी के उल्लेखनीय विद्वान् नीलकण्ठ दीक्षित ने तीन शतक काव्यों की रचना की : कविविडम्बनशतक, सभारञ्जनशतक एवं शान्ति क्लिासशतक। इसी शताब्दी के प्रसिद्ध काव्यशास्त्राचार्य एवं वैयाकरण अप्पय दीक्षित ने वैराग्यशतक नाम की रचना की। इसके पश्चात् अठ्ठारहवीं एवं उन्नीसवीं शताब्दी में भी शतक काव्यों की रचना व्यापक रूप से की जाती रही। इन दो शताब्दियों में अनेक उल्लेखनीय काव्य प्रसिद्धि को प्राप्त कर सके। इनमें से कतिपय काव्यों का उल्लेख निम्न प्रकार है -

1. वीरेश्वर शास्त्री द्वारा रचित अन्योक्तिशतक
2. गुमान कवि द्वारा रचित उपदेशशतक
3. नरहरि द्वारा रचित शृंगारशतक
4. कूर्मनारायण द्वारा रचित सुदर्शनशतक
5. मूक कवि द्वारा विरचित पाँच शतक काव्य (कटाक्षशतक, मन्दस्मितिशतक, पादारविन्दशतक, भार्याशतक एवं स्तुति शतक)
6. कामराज दीक्षित द्वारा रचित शृंगारमल्लिका त्रिशती (तीन शतक काव्यों का संग्रह।)

संस्कृत साहित्य में शतक काव्यों का उद्भव प्राचीन काल से विद्यमान रहा है। प्रारम्भ में मुक्तक काव्यों के रूप में सृजित सौ (100) पद्यों के संकलन को शतक संज्ञा से अभिहित किया जाता था, अत: काव्य-विधा की दृष्टि से शतक नाम को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाकर मुक्तक संज्ञा को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया। इस मुक्तक विधा के सन्दर्भ में सर्वप्रथम उल्लेख भामह के काव्यालंकार में प्राप्त होता है। भामह ने अनिबद्ध काव्यों के भेदों के अन्तर्गत मुक्तक की गणना स्वीकार की है। वस्तुत: अमरुकशतक एक ऐसी रचना है, जो यह स्पष्ट कर देती है कि शतक काव्य का प्रारम्भ मुक्तकों के सृजन से ही हुआ है। आचार्य आनन्दवर्धन के अभिप्राय को उनके टीकाकार अभिनवगुप्त ने भी भली भाँति स्पष्ट करने का प्रयास किया है।शतक काव्य मूलत: कोई विधा नहीं है, अपितु सौ पद्यों के संकलन के कारण किसी भी काव्य विशेष को शतक संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है, किन्तु यह धारणा शास्त्रीय दृष्टि से सम्यक् नहीं कही जा सकती, क्योंकि संस्कृत साहित्य में शतक काव्यों की सुविकसित परम्परा रही है, अत: काव्य के प्रभेदों में शतक काव्यों की गणना किये जाने के कारण उसका कोई लक्षण निर्धारित किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

इस प्रकार कहा जा सकता है कि ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी से ही अविकसित रूप में शतक काव्य लेखन होता रहा है, जो बीसवीं शताब्दी तक निरन्तर रूप में शतक काव्य परम्परा के रूप में

पूर्ण विकास की अवस्था को प्राप्त कर चुकी है। वर्तमान शताब्दी में भी आधुनिक साहित्यकारों, रचनाकारों द्वारा निरन्तर रूप से शतक काव्य लेखन का कार्य किया जा रहा है। इसी शृंखला में डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने भी अपनी लेखनी के माध्यम से सभी प्रकार के शतक काव्यों का सृजन कर माँ वाग्देवी के कोषागार की समृद्ध किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. झा, धनीन्द्र कुमार, पा. गृ. सं. 3/2/10, जे.बी. चेरिटेबल ट्रस्ट, लखनऊ, 2006, पृ.सं. 192
2. त्रिपाठी, रामसागर, मुक्तक-काव्य-परम्परा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1999, पृ.सं. 2
3. उपर्युक्त, पृ.सं. 2
4. वेदव्यास, अग्निपुराण, 337/36,गीताप्रेस गोरखपुर, 1990, पृ.सं. 246
5. त्रिपाठी, रामसागर, ध्वन्यालोक, 3/90, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1979, पृ.सं. 410
6. अभिनवगुप्त, ध्वन्यालोक लोचन टीका, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1985, पृ.सं. 175
7. मिश्र, आचार्य रामचन्द्र, काव्यादर्श (दण्डी), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1975, पृ.सं. 112
8. हेमचन्द्राचार्य, काव्यानुशासन, 8/207, चौखम्बा विद्याभवन,वाराणसी, 1999, पृ.सं. 109
9. पाण्डेय, राम खिलावन, गीतिकाव्य, ज्ञानमण्डल, काशी, 1994, पृ.सं. 17
10. मृणालिनी, उषा, गीतिकाव्य में राष्ट्रिय भावना, सुशील प्रकाशन, इन्दौर, 1998, पृ.सं. 176
11. पाण्डेय, गंगाप्रसाद, महादेवी वर्मा का विवेचनात्मक गद्य, इण्डियन प्रेस, इलाहबाद, 1944 पृ.सं. 141
12. रॉस, एमनिस्ट, लिरिक पॉइट्री, ऑक्सफोर्ड प्रेस, दिल्ली, 1989, पृ.सं. 64
13. गुप्ता, डॉ. रामशरणदास, साहित्यशास्त्र, सुशील प्रकाशन, इन्दौर, 1981, पृ.सं. 330
14. उपर्युक्त, पृ.सं. 331
15. काव्यादर्श (नृसिंह कृत टीका) प्रथम परिच्छेद, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1977, पृ.सं. 169